जो हो चाह न रही तुम्हारी,
परम प्रसादी भी पाने की।
एक चाह है लिपट तुम्हारे,
रज से निर्मल हो जाने की॥

"विनीत"

समर्पण

मेरे मनमोहन ! उपास्यवर !

हृदयमानसरचर ! मोहन !

लोचनसुखद ! उदारहृदय ! हे

एकमात्र अभिसंचित धन !

कुञ्जविहारी हो कहलाते,

कुञ्ज तुम्हारा प्रेमाधार।

अतः 'कुञ्ज' है तुम्हें समर्पित,

कर लो सानुराग स्वीकार।

प्रेमपात्र—

'विनीत'

उपहार

श्रीयुत

कविता-कुसुममाला का प्रथम—पुष्प

कुञ्ज

रचयिता—

श्री जयनाराण झा 'विनीत'

विद्यालङ्कार, विशारद।

प्रकाशक—

हिन्दी-साहित्य-कार्यालय,

लहेरियासराय, दरभंगा।
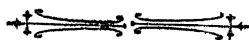
प्रथम संस्करण]   सं० १९८४ वि०   [मूल्य ।=)

प्रकाशक—
श्रीआनन्दबिहारी प्रसाद,
हिन्दी साहित्य-कार्य्यालय,
लहेरियासराय (दरभंगा)
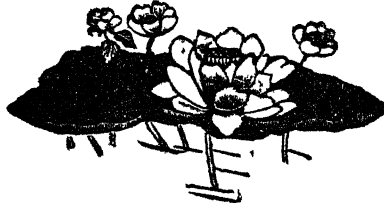
मुद्रक—
शिवशंकर मिश्र, भारत प्रेस,
बड़ीपियरी, काशी।

दो बातें

प्रस्तुत पुस्तक पं० श्रीजयनारायण झा 'विनीत' की फुटकर कविताओं का संग्रह है। विनीतजी मेरे अभिन्न-हृदय मित्रों में है, इतना ही क्यों, ये मेरे बालसंगी सहपाठी और पड़ोसी है। अतः इनके विषय में मेरा कुछ लिखना योग्यता की गणना से अनधिकार प्रयास भले ही हो, किन्तु परिचय और सहवास की गणना से सर्वथा समर्थनीय है। इसके अतिरिक्त प्रकाशक का भी अनुरोध है कि मैं इसकी भूमिका लिख दूँ, क्योंकि घर का भेदिया सदा से बदनाम होता आया है और वास्तव में उचित भी है। घर का भेदिया घर की रोटी रोटी का हाल जानता रहता है। मैं भी शायद विनीतजी के विषय में वैसी ही जानकारी रखता हूँ। हो सकता है—मेरे द्वारा विनीतजी के प्रच्छन्न रहस्यों का यत्किंचित् उद्घाटन हो जाय। सुतरां

में अवसर और स्थल के अनुसार कवि और कविता के विषय में दो बातें कह जाता हूँ।

विनीतजी का जन्म दरभंगा जिले के अन्तर्गत नवादा ग्राम के दीन किन्तु कुलीन ब्राह्मणकुल में हुआ। पिता के निरीक्षण में इनका विद्यारम्भ हुआ सही; परन्तु थोड़े ही दिनों के बाद विधि की बाँकी झाँकी के कारण इनको पठन-पाठन का भार अपने ही ऊपर लेना पड़ा। अविश्रान्त परिश्रम और प्रखर बुद्धि के सहारे इन्होंने पठनक्रम जारी रखा। 'परिश्रम का फल मीठा होता है'—के अनुसार इन्होंने विहार विद्यापीठ से प्रवेशिका तथा स्नातक (विद्यालंकार)की और हिन्दी साहित्य-सम्मेलन से मध्यमा (विशारद) की परीक्षा पास की। सम्प्रति ये समस्तीपुर राष्ट्रीय-विद्यालय में अध्यापक हैं। यहाँ इतना ही कहना अलम् होगा कि ये केवल पन्द्रह वर्ष की अवस्था से कविता करते आ रहे हैं। इस समय इनकी अवस्था लगभग पच्चीस वर्ष की है। थोड़े समय में इन्होंने दो काव्य 'घननादवध' एवं 'दूत श्रीकृष्ण' की तथा 'सन्देश', 'महिलादर्पण' 'वीर-विभूत' आदि खंड काव्यों की रचना की है। इनके अतिरिक्त कितनी ही फुटकर कविताएँ लिखी हैं जिनमें से कुछ कविताओं का संग्रह 'कुंज' आप के हाथ में है।

यद्यपि प्रस्तुत 'कुंज' में विहार करने का स्वच्छन्द अवसर मुझे प्राप्त न हो सका, तथापि मैंने इसे सरसरी नजर से एक

बार देखा है। इस विहगावलोकन के द्वारा मेरे मन पर जैसा कुछ प्रभाव पड़ा उसको मैं आपके सम्मुख रखता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरा ऐसा प्रयास काव्य मर्मज्ञों की दृष्टि में अनर्गल जँचेगा, किन्तु कविता की उत्तमता की कसौटी मेरी तुच्छ समझ कुछ विचित्र है। 'कविता वही उत्तम है जो प्रथम दृष्टिकोण-द्वारा ही हृदय के अन्तस्तल पर, चित्त की चंचल वृत्ति को रोक, अपना प्रभाव उत्पादित कर देती है'—यही मेरी धारणा है और इसी धारण के आधार पर अपना मत प्रकट करता हूँ।

'रमणीमार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' और 'रसात्मकं वाक्यं काव्यम्'—ऐसे कथन हमारे साहित्यमर्मज्ञों के हैं। अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रकट करनेवाला शब्द काव्य है और जिस वाक्य से हृदय में रस का उद्रेक हो वह वाक्य काव्य है। जिस काव्यमें रसिकता नहीं जो रचना भव्य-भव्य भाव सुमनों की सुरभि से पाठक के हृदय को हर लेने की सामर्थ्य नहीं रखती, जो कविता अपने रंग में कविता-कामुकों को रँग नहीं सकती—वह काव्य नहीं है। आप 'कुंज' में विहार कीजिए तो पाइएगा कि इसका प्रत्येक कुसुम अपनी सरसता, कमनीयता और सुन्दरता से आपके मनोवेग को रोक लेता है - इसकी सुधासरसावनी सुरभि आपके उद्विग्न मनको लोकोत्तर आनन्द प्रदान करती है—और इसकी विचित्र चारु चित्रित

रचना रचयिता के कौशल की भूरि-भूरि प्रशंसा कराती है। अब यह जिज्ञास्य हो सकता है कि कविता में उपर्युक्त चित्ताकर्षक गुण कैसे आते है। अंगरेजी में एक लोकोक्ति है कि Poets are born, not made—कवि उत्पन्न होता है बनाया नहीं जाता। कोई भी कविता बिना प्रतिभा की भित्ति के भली भाँति के खडी नहीं हो सकती। जिस कवि में इस आनन्दप्रसविनी प्रतिभा का अभाव है उसकी कविता किस तरह सहृदयों के सरस एवं कोमल हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर अपने रंग में रँग सकती है? रस से ओतप्रोत, हृदयहारिणी एवं प्रभावोत्पादिनी कविता के लिए प्रतिभा का परम प्रयोजन है। इस प्रतिभा का अभ्युदय कवि के हृदय में जन्म ही से होता है। हाँ उस कविगत प्रतिभा के अंकुर को पल्लवित, कुसुमित और सुफलित करने के लिए अनेक वाह्य साधनों की आवश्यकता होती है। ये वाह्य साधन हैं प्रकृति निरीक्षण, पारपार्श्विक परिस्थित एवं साहित्यशास्त्र का ज्ञान। इन साधनों की सहायता से कवि की परमेश्वर-प्रदत्त प्रतिभा का उद्बोधन हो सकता है। इतना निःसंकोचभाव से कहा ज़ा सकता है कि कुंज के रचयिता मेरे मित्र विनीतजी में ईश्वर-दत्त प्रतिभा है जो आपको इसके एक बार के अवलोकन से ही प्रतिभासित हो जाता है। तब रही वाह्य साधनों की बात उनके सम्बन्ध में इतना ही कहूँगा कि रचयिता अभी मेरे ही जैसे नवयुवक हैं—परिपक्व नहीं। अथच वाह्य साधनों की

उपार्जन करने के निमित्त ये सचेष्ट हैं और आशा है, बहुत शीघ्र उनके सहारे इनकी प्रतिभा अभ्युदित हो हिन्दी-साहित्य-गगन में पूर्णशशि-कला की नाईं प्रतीयमान होगी।

यह भी कहा जाता है कि कविता कवि के हृदय का प्रतिबिम्ब है, वह उसमें वैसा ही प्रतिबिम्बित रहता है, जैसे दर्पण में छाया। वस्तुतः 'कुंज' में विनीतजी का हृदय इनकी वाणी के साथ-साथ बिलस रहा है। विनीतजी का जैसा नाम है, वैसे ही इनमें गुण भी हैं और वे ही दैन्यभाव, भक्तिभाव, नम्रता एवं सेवाभाव सम्मिश्रित गुण 'कुंज' के प्रत्येक कुसुमतरु की शाखा-प्रशाखाओं पर गरीयमान हैं जो इसमें रमण करते समय आपसे समवेदना और सहानुभूति की सदाशापूर्ण और सफल याचना करेंगे।

कविता की यथार्थ परीक्षा कवि ही कर सकता है या जो मानवस्वभाव और प्राकृतिक नियमों का विशेषज्ञ है तथा जिसका हृदय उदार, सहानुभूतिपूर्ण, रस-स्निग्ध और दयार्द्र है। जिसमें समवेदना और सहनशीलता नहीं, वह भला कविता की परख क्या करेगा? यह काम सर्व साधारणों का नहीं है। अतएव यदि इस-'कुंज' का विहार दो चार काव्यमर्मज्ञ सज्जनों का भी मनोरञ्जन कर सका तो रचयिता अपने प्रयास को सफल समझेंगे।

एक बात और है जैसा मैं ऊपर कह चुका हूँ कि रचयिता अभी मेरे ही सदृश नवयुवक हैं, तिसपर भी इनका यह प्रथम

प्रयास है; अतः रचना सर्वथा निर्दोष नहीं हो सकती और उसको निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा करना व्यर्थ है। एक तो कभी भी ज्ञान परिपक्व नहीं कहा जा सकता, दूसरे कवि कर्म परम कठिन। ऐसी दशा में यदि कोई उद्भट प्रतिभासम्पन्न विद्वान भी ऐसी चेष्टा करे तो उसे उपहासास्पद होने के अतिरिक्त और चारा नहीं, फिर हम अल्पज्ञ नवयुवको की क्या चर्चा! अथच गुण दोष प्रदर्शन के बखेड़े में न पड़ सिर्फ इतना ही कहकर समाप्त करता हूँ कि मेरे विचार से इस 'कुंज' की बहुत सी कविताएँ बड़ी अच्छी बन पड़ी हैं।

अब मैं आपलोगों का अधिक समय लेना नहीं चाहता, क्योंकि आप 'कुञ्ज' में विहार करने को उकताते होंगे। अन्त में मैं निम्नाङ्कित अपूर्व सूक्ति को उद्धृत कर अपनी बातें समाप्त करता हूँ।

"गुणादोषौ बुधो गृह्णन्निन्दुक्ष्वेडा विवेश्वरः।
शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति॥"

हिन्दू-विश्वविद्यालय काशी
देवोत्थान एकादशी
सं० १९८४ वि०

श्री रामलोचन शर्मा 'कंटक'

करलो !

(१)

त्याग परिमल निर्मल निश्चल,
सुधारस राशि सुमन कल दल !
तूल मृदु प्रकृति मंजु शशि मित्र !
अखिल लोकोत्तर चाह चरित्र !
मुझे करलो अलि निज रज का !
शरण आया हूँ विकल थका !!

(२)

भरत भू का समुपास्य प्रधान !
जगद्गुरु पद दायक भगवान !

सुमन सेवित होने का हेतु !
भीष्म भव भव भव वारिधि सेतु !
वेदनामय व्याकुल आह्वान,
करो अब, इस दुखिया का कान।

(३)

आत्म पद पद्म-प्रेम केवट,
भक्ति तरणी दृढ़तम झटपट,
भजे, करुणा निधि अमितोदार।
डूबता मुझको कर दो पार।
चिता चिन्ता की घबराहट,
लपट में करता हूँ छटपट॥

(४)

भुजंगी, भृंगी, पहने चाम,
मुण्डमाली, भूती, निष्काम,
त्रिलोचन, शूल-पाणि भूतेश,
मशानी-प्रिय, धूर्जटी महेश,
धतूरा, भांग, गरल भोगी,
विरागी, रागी-वर योगी,

× × × ×

अमंगल वपु, मंगल कर मूल,
स्वजन सुख सुधा सिंधु मृदु फूल,
प्रभो ! हों इतना ही अनुकूल,
कि करलो मुझको निजपद धूल,

कविते!

१
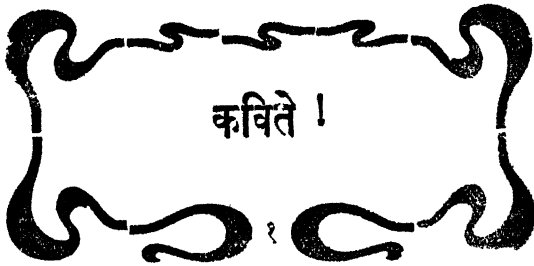
कोई तो कहते अपने को,
कवि वर, कोई तो कवि रत्न।
कवि चूड़ामणि कहलाने को,
करते कोई विविध प्रयत्न॥

(२)

कवि सम्राट, काव्य बन केहरि,
बतलाते कोई निज को।
विकासाने वाले शशि सविता,
कविता कैरव सरसिज को॥

(३)

काव्य रसाल कुञ्ज का कोकिल,
निज को कोई कहते हैं।
कविता बन बसन्त निज को कह,
कोई गर्वित रहते हैं॥

(४)

कविता मधु निधि मधुकर कोई,
अपने को हैं बतलाते।
कविता कामिनि कान्त आपको,
कह अयि कविते! सुख पाते॥

(५)

देवि ! योग्यता, सहास, इच्छा,
मुझे न यह सब कहने की।
इच्छा है तेरा सदुपासक,
किङ्कर होकर रहने की॥

(६)

तेरे सौम्य क्षेत्र में रमने-
वाला, रागी, वैरागी –।
तेरी दया-दृष्टि भिक्षुक हूँ,
महादीन आया त्यागी॥

(१)

चाहो तो न करो आलिंगन,
होने दो मत पाद-स्पर्श।
इतना से न करो परवंचित,
मुझ अनाथ को हे आदर्श!

(२)

लगन लगा चातक सा मुझ
दुखिया का हे सर्वस्व महान!
अन्तिम भीख यही जीवन की,
दे दो करुणा स्नेह निधान!

(३)

मोर सरिस घनश्याम तुम्हें मैं,
देख रहूँ हो नृत्य विभोर।
मैं अनुराग रँगा पाऊँ, तुम, को—
सर्वत्र सदा सब ओर॥

(४)

यथा केतकी रज में गज, अलि—
पाटल रज में रहते लिप्त।
तथा मुझे भी तुम अपने पद-
रज में हो होने दो तृप्त॥

आन्दोलित

(१)

मृदुल तूल सी, कंज कलेवर,
कान्तिमयी शुचि चपला सी।
त्याग तरणि सी तेज-मयी, मृद-
शीतल सुधा सुज्योत्स्नासी॥

(२)

सौम्य सोम सी, सुखद शान्ति सी,,
शुभ सुन्दरता, सुषमा सी।
मनोहरा ऊषा, संध्या सी
ललित सरस कल कविता सी॥

(३)

नव प्रवाल पल्लव मोती मय,—
मंजुल कलिका खिलती सी।
मोहन मंत्र कोष दिखलाती,
लाजवती कर परसी सी॥

(४)

जीवन मयी रूप प्रतिमा वह
एक कटाक्ष चला करके।
परम प्रभामय शुचि प्रकाश की
प्रथम रश्मि दिखला करके॥

(५)

स्वर भर उर वीणा में सहसा
लहरा लहर अशान्ति मयी।
एक बार चमकी चपला सी
तुमुल तिमिर में कहां गई!

(६)

कहां छिपी जा ज्योति मनोहर
वह सुलगा वड़वाग्नि ज्वलंत।
शान्ति अंक में क्रीड़ा करता
क्षुब्ध हुआ सागर अत्यन्त॥

(७)

तब से मची हुई है दुर्दम
क्रान्ति वेदना की उर में।
कोलाहल अति मचा हुआ है
अभ्यन्तर अतः पुर में॥

(८)

सहसा परम प्रकाश देख ज्यों,
चका चौंध है लग जाता।
फिर साधारण तम भी तब अति
सूचि-भेद्यता दरशाता॥

(९)

त्योंही आंखों के आगे है
फैला तुमुर तिमिर का जाल।
महा पंक में फँसी गाय सी
सहता व्याकुलता विकराल॥

(१०)

हाथ हाथ है नहीं सूझता
और भ्रान्ति है इतनी घोर ।
कि न जीवन-पथ पर बढ़ सकता
अपने भर करके भी जोर ॥

(११)

इस विषमावस्था से झटपट,
देवि ! दया कर कर उद्धार ।
इस उत्तुंग तरंग तीव्र से,
ताड़ित तरणी करदे पार ॥

(१२)

दिवस निशा ऋतु मास वर्ष रवि
शशि तारादिक प्रकृति पवित्र ।
सब जैसे के तैसे ही हैं
करते क्रीडा चित्र विचित्र ॥

(१३)

कौतुकता सुन्दरता सुषमा,
मनोहारिता मोदकता ।
ज्यों के त्यों सब के रहने पर भी,
चलता उनका न पता ॥

(१४)

प्रत्युत ये सब आज दीखते
विषम विषताओं से पूर्ण ।

अभिलाषायें, आशायें सब
निमिष मात्र में हुई विचूर्ण ॥

(१५)

अन्तर्जग में मूक वेदना का
है हाहा कार मचा ।
पर एकान्त मूक रोदन
बहते को तिनकाधार बचा ॥

(१६)

अयि ज्योत्स्ने! अयि दिव्य ज्योति!!
खिलती कलिका सी, झट आजा ।
हरा भरा कर जीवन उपवन-
उजड़ा, स्नेह सुधा बरसा ॥

(१७)

भीषण अंधकार यह हर ले
प्रभा पुनीत परम प्रकटा ।
बिषम वेदना बन से सुख
समतल पर रमने दे अब आ ॥

(१८)

इस नव मंदिर में खाली है
आसन तेरे लिये सजा ।
विश्व विमोहक मृदु स्वर लहरा,
उर वीणा को बजा बाजा ॥

(१९)

स्वाती सलिल प्राप्त चातक मन
मोर मुग्ध तुझ घनवर पर ।
करे नृत्य वह जिससे दर्शक
तन्मय हो विस्मित हो कर ॥

(२०)

अगर न यह होने देगी तो
यह कल कुसुम विकसता हाय !
निश्चय रज में मिल जावेगा
झोंके से विदलित निरुपाय ॥

(२१)

इसकी ठंढ़ी सांस आखिरी,
देगी तुझको चिरउत्ताप ।
तरह तरह से करुण कहानी
इसकी प्रकृति गायगी आप ॥

(२२)

शान्ति पयोनिधि आन्दोलित का
समझ इसे अन्तिम संदेश ।
निर्णय कर सविवेक न तो खल
होगा पश्चात्ताप क्लेश ॥

कर देना

(१)

नित प्रति राह जोहता रहता,
हूँ, तुम अब आओगे।
चख चकोर का चन्द्र बनोगे,
शान्ति सुधा लाओगे॥

(२)

प्रेम सूत्र में गुँथे भाव,
सुमनों की सुन्दर माला।
तुम्हें समर्पण करके मैं,
हो जाऊँगा मतवाला॥

(३)

प्रति युग, प्रतिदिन, प्रति निशि
प्रति पल में आना भी होता।
किन्तु तुम्हें मैं नहीं देखता,
मानो रहता सोता॥

(४)

सुखद सौरभान्वित बसन्त में,
हो बन-पथ से आते।
पावस निशि कृष्ण में
गर्जन मय घन-रथ से आते॥

(५)

सुख, दुख, हर्ष शोक, मंगल,
अस्रकुन नय और अनय में।
प्रेम, त्यागसेवा, स्नेहादिक,
सब में सभी समय में॥

(६)

शान्ति सुधा, ले प्रेम कृपा निधि!
तुम मिलने आते हो।
किसी और धुन में निमग्न,
लख मुझे चले जाते हो॥

(७)

आना भी अनुभव करता हूँ,
किन्तु पड़ा तन्द्रा में।
खुलता पलक न हाय! देखता
रहता स्वप्न सदा में॥

(८)

आते समय मोह पट पर से
जब प्रकाश छन आता।
चौंक खोजता विस्मित लोचन से
तुम को घबराता॥

(९)

"अब न चुकूंगा" इस निश्चय से
देता रहा दिलाशा।

फिर फिर मन को,—पर बीते बहु,
अवसर, पुरी न आशा॥

(१०)

अब जब आना, मुझे जगाना,—
किसी तरह, ले लेना—।
तुच्छ समर्पण मेरा कृपया,
जन्म सफल कर देना॥

प्रणय-प्रसाद

(१)

है वह क्या? जो प्रणय-प्राप्ति को,
करता है विह्वल पल पल।
प्राण, प्राण से भी प्रिय, सब कुछ
तजबे को करता पागल॥

(२)

होता सम त्रिलोक जिससे
हर जाता साध्यासाध्य-ज्ञान।
है वह कुछ वास्तविक वस्तु?
वा केवल माया मोह निधान॥

(३)

उसके स्पर्श मात्र से होता, है—
पावक मय मलयाचल।
लोहा, पत्थर, पविका उर हो—
जाता है जल तुरत पिघल॥

(४)

हो जाता है तेल खौलता
हुआ, सलिल अतिशय शीतल।
हिमकर अनलाकर होता
उर में जलता है बड़वानल॥

(५)

होते हैं प्रतिकूल फलद ही
शीतलता के सब उपचार।
कुसुम, काकली कोकिल की है
होती कुलिश कराल कटार॥

(६)

नीर निमग्न नेत्र रहते हैं,
हरदम, तौभी तृषित अपार।
इतना भीषण! आह!! चाह तौभी
उसकी!!! कैसा व्यापार!

(७)

नहीं, किन्तु ये सभी परिस्थितियाँ
हैं विपुल व्यूह के द्वार।
हो उत्तीर्ण जहाँ जाना होगा
ठुकरा कर सभी विकार॥

(८)

गागर में सागर सा अतुलानन्द
दिव्य आलोक निधान।
उस सु-केन्द्र में-जहाँ विषमताओं का
हो जाता अवसान॥

(९)

तटनी तोयधि में ज्यों त्यों,
वृत्तियाँ उसी में होती लय।
भेद भाव से शून्य देह, मन,
प्राण, विश्व होता तन्मय॥

(१०)

हो जाता सच्चिदानन्द
तेजोमय, प्रेमी—एक यही।
दुर्गम प्रेम मार्ग गामी को
रहा चलाता संतत ही॥

प्रतीक्षा

(१)
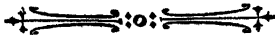
था सम्वाद मिला मुझको तुम
आओगे हे प्राणाधार
करता रहा प्रतीक्षा इससे,
पल पल बैठा खोले द्वार।

(२)

तन की मन की सभी वृत्तियाँ
कानों] आँखों में आकर।
ध्यान-मग्न एकाग्र तुम्हारे
पथ पर जमीं तुरत जाकर॥

(३)

अगर किसी की—सुन पड़ती थी
कभी दूर से भी,—आहट!
तभी उमगता था उर आँखें
ललक दौड़ जाती थी झट॥

(४)

सजा हुआ आसन उमंग से
फिर फिर सजने जाता था।
किन्तु तुरत ही उत्सुकता वश
दौड़ द्वार पर आता था॥

(५)

देख दूसरा है आगन्तुक
सत्वर सिर था झुक जाता।
उमर उमगता उर उत्पाटित
तरु सा था पछार खाता॥

(६)

पड़ता था मालूम उरोत्पल को
हिम गिरि ने दबा दिया।

व्योम बिचुम्बित नग पर सेवा
मुझे किसी ने गिरा दिया॥

(७)

आ पडता था काम कभी, वा—
हुआ स्वजन का ही आह्वान।
किसी बहाने टाला उसको
जब लो हुआ अवधि अवसान॥

(८)

प्रकट लक्षणों से सारे पर
आना जान असंभव सा।
दीर्घ आह, उच्छ्वास छुटे उर—
उपवन पर पावक बरसा॥

(६)

कुसुम कलेवर! उत्पल उर!! हे प्यारे!!!
कैसा है यह खेल ?
कौतुक वश क्यों नहीं सोचते ?
तुमसे क्या यह खाता मेल।

(११)

तुम्हीं कहो, है उचित अपटुका
नाव नीरधि में खेना।
स्वाती जल विश्वास दिलाकर
चातक को पावक देना॥
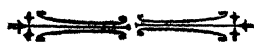
चाह

(१)

मोती रत्नों की अभिलाषा,
आशा से उत्साहित होकर।
संकट की कल्पना भूल कर,
प्राण मोह तक से कर धोकर॥

(२)

साहस मध्य मस्त गोता पर,—
गोता रहा लगता फिर फिर।
पर हरबार सिर्फ सिकता कण
पाया विपदाओं से घिर घिर॥

(३)

अभिलाषा विद्युत् प्रवाह जब —
बन्द हुये, आशा सुतार दल—।
छिन्न भिन्न हो विखर गये हैं,
जैसे शुष्क सुमन के दल कल॥

(४)

श्रान्त शिथिल निर्बल राही सा,
बैठ गया बिलकुल हताश हो।
हो निर्मोह बुझा बलकर
वंचना भरा तृष्णा-प्रकाश को॥

(५)

मोती मणि रत्नादि विभव की,
तृष्णा तुमुल वासनादिक सब।
बलि चढ़ चुके तुम्हारी वेदी,-पर
निर्द्वन्द बना मन को जब॥

(६)

तब मोती रत्नादि विभव की
ढेर आप आती पल पल नित।
पर इनका ऐश्वर्य्यादिक अब,
जरा न कर सकते चंचल चित॥

(७)

क्षुधा तृषा जब रही न तब वह,
व्यंजन पय पयोधि पहुँचाना।
है कैसा कौतुक रहस्य मय,
अय कौतुकी! वा कि है ताना?

(८)

वा है मोह किरात जाल दृढ़
नाना नाच नचाने को फिर?
दया दान है वा कि तुम्हारा,
स्नेह सुधामय सुखदायी चिर?

(९)

जो हो, चाह न रही तुम्हारी,
परम प्रसादी भी पाने की।
एक चाह है लिपट तुम्हारे,
रज से निर्मल हो जाने की॥

वि-यो-गी

(१)
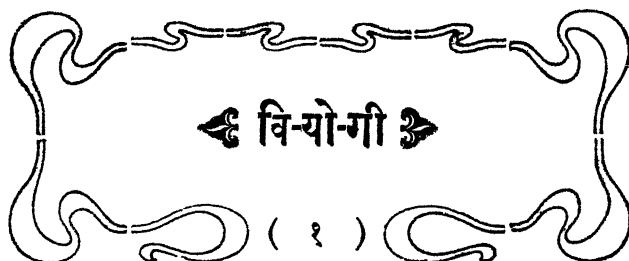
अम्बर स्मृति पर तेरी सुधि जब,
दामिनि सो सहसा आती ।
अन्तस्तल में आह अनोखी,
आग तभी है लग जाती ॥

(२)

सोया सिंधु क्षुब्ध हो उठता,
हा हा कार मचा देता ।
रूप विचित्र निमिष में—
बिचलित अन्तर्जग तब धर लेता ॥

(३)

वारि विहीन मीन जी करता,
वायु वेग से उड़ जाऊँ ।
वनू धन्य तेरे पद-रज में,—
लिपटा, छाया पद पाऊँ ॥

(४)

दिल मसोस कर तलफ तलफ कर,
रह जाना पड़ता निरुपाय ।
अय निर्मोही ! अधिक नहीं तो
झांखी भी दिखला जा हाय ॥

अभिलाषा

(१)

चाह नहीं है आप मुझे ही,
प्रणयदान अपना देवे।
सखे, मित्र, मानस-मराल,
प्रियतम कह कण्ठ लगा लेवें॥

(२)

मुख मयंक मुसकान मयूषों से,
हीतल शीतल करके।
स्वेच्छा के प्रतिकूल जुड़ावे,
मुझको केवल बल करके॥

(३)

जो जिसको चाहे दे देवें,
जिसे खुशी हो अपनावें।
सींचें सुधा जहां जी चाहे,
परमानन्द सदा पावें॥

(४)

हो रुचि जिधर जहां ही जावें,
बजे वहां जय की भेरी।
शान्ति मोद मंगल मय सत्पथ
हो,—है ईश-विनय मेरी॥

(५)

मेरा ताप, प्रणय पय-पावन,
उदासीनता वायु यही ।
जलद रचेगी वह पावेगी—
जिससे,—जीवन बिमल मही ॥

(६)

पर है कहती अङ्ग अङ्ग,—
जीवन की मूक व्यक्त भाषा ।
पद पंकज-रज अलिका ही पद,
मिले मुझे,—है अभिलाषा ॥

(१)

अर्पण करने को अपने को
ललक ललक अभिलाषा कर ।
भाव लहर में मग्न मूक हो
कभी उसे भाषा में भर— ॥

(२)

कभी भटकता, कभी राह पर-
आता, बढ़ता बारम्बार ।
एकमात्र धर लक्ष ध्यान में-
"पाऊँ तुमको किसी प्रकार" ॥

(३)

पर ज्यों ज्यों जाता समीप तुम,
त्यों त्यो दूर हुये जाते ।
तुम्हें न पाता घबरा जाता,-
थक कर, तुम न तरस खाते ॥

(४)

समझ पड़ा कुछ कारण, ऐसी—
कड़ी कृपा दरशाने का ।
भाव तुम्हारा है सोना मे,
सौरभ भर अपनाने का ॥

(५)

सदा, सभी स्थल, सभी दशाओं,
कर्म बचन तन मन मति में ।
बना रहू प्रतिबिम्ब तुम्हारा,
सुरति विरति सम्मति गति मे ॥

(६)

भाषा, अभिलाषा सब तुम में,
क्षीर नीर सम मिल जावें ।
"मैं कोई हूँ" या "अपनापन" के,—
जब, भाव न रह पावें ॥

(७)

तभी तपस्या पूरी होगी,
मेरी तुमको पाने की ।
महा साधना यह सर्वोपरि
है न बात घबराने की ॥

(८)

"मैं," "तुम" का जब भेद भुलेगा,
तुम सब कुछ मेरा होगे ।
बनी धारणा है मुझको तब,
तुम निश्चय अपना लोगे ॥

कैसे

(१)

माफ करो तुम, माफ करो तुम,
माफ करो तुम प्यारे !
सब बिधि जाओ भूल हमारे,
दुर्बचनों को सारे ॥

(२)

निर्दय, वज्र हृदय अभिमानी,
अविवेकी कह डाला ।
दया-सिन्धु ! कारण था इसका,
हताशाग्नि की ज्वाला ॥

(३)

अहंकार आवरण न अब तक-
हटा,—मोह मल भी है।
त्याज्य जानते जिन्हें, न तजते,
ममता बनी अभी है॥

(४)

जगदानन्द यज्ञ में जो कुछ,
है कर्त्तव्य हमारा।
किया न हमने,—पड़ा हुआ है,—
ज्यों का त्यों वह सारा॥

(५)

दे न ध्यान अपमान मान पर,
भूल भेद-भावों को।
की न सबों की सेवा हमने
तज फल के चावों को॥

(६)

हुए न धन्य ग्रहण कर अवसर,
शुचि तम सेवा काया।
भूत मात्र में लीन हुए अब तक न
भूल कर आया॥

(७)

और तुम्हारी इच्छायें हैं
जितनी, हम उनको ही।
पाते रहे सदा करने को
विविध वेष में यों ही॥

(८)

की न एक भी पूरी, उलटे—
जो न तुम्हें है भाती।
वही वासना अब तक है,
हम में करतूत दिखाती॥

(९)

पूर्ण चन्द्र के लिये पूर्व ज्यों,
रहता गोद पसारे।
अपनाने को हमे प्रतीक्षा में,
हो तुम त्यों प्यारे!

(१०)

हम शशि अमावस्य में अब तक
भटक रहे हैं ऐसे।
कि न हो सके पूर्ण,—पावेंगे
गोद तुम्हारी कैसे॥

मनोऽर्थ

(१)

जीवन धन की विविध दशायें
भोगी अब तक मैंने नाथ!
सरि सी प्रगति रही अब तक
मिलने को शान्ति सिन्धुके साथ॥

(२)

गति गंगा को मिले आज लों,
गिरि-वर, गह्वर, जह्नु अनेक ।
शान्ति-शान्ति सागर नैसर्गिक
मिला न इसको लक्ष-स्व एक ॥

(३)

देव ! स्व तेज जगा दो मुझ में
बने भगीरथ नृपमणि वह ।
"एक तुम्हारी इच्छा मय हो जाऊँ"
हो शंख-ध्वनि यह ॥

(४)

गान तुम्हारे शब्द मनोहर में,
जीवन गाता जावे ।
एक मनोऽर्थ—अंश यह उस
शुचि शान्ति सिन्धु मे लय पावे ॥
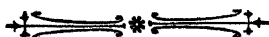
प्रभा-प्रलय

(१)

चित्रित पटसा भूरि भावना का
भारी भण्डार ।
रङ्ग विरङ्गे दृश्यों का, था,
दिखलाता अवतर ॥

(२)

आशोद्गार नेह- दीपक की
ज्योति शिखा अभिलाष ।
उसकी शक्ति मोहनी का—
अति करती रही विकाश ॥

(३)

काल छिद्र से नेह निकल कर
वह विरक्त की वायु ।
करने लगी क्षीण क्षण क्षण बढ़
दीप शिखा की आयु ॥

(४)

वायु विताड़ित उर वीणा का
हुआ घोर झंकार ।
सहसा स्वर की गई माधुरी,
बिगड़ गये सब तार ॥

(५)

किन्तु वेग को हरती भरती
नेह ज्योति अभिराम ।
द्या दीप्ति सी महा शक्ति की
प्रकटी "प्रभा" ललाम ॥

(६)

चातक, मीन, दुग्ध, जल स्वाती
सदृश हुआ मैं लीन ।
माया-मूढ़-मुग्ध-दर्शनः सुधि
मुझको और रही न ॥

(७)

प्रलय प्रभंजन विपुल घना घन
प्रवल विषम बर वृष्टि—
आने के पहले—ज्यों होती—
है निमग्न यह सृष्टि—

(८)

वायु मन्दता, घोर उष्णता,
प्रकृति शान्ति में पूर्ण ।
त्यों विवेक चेतना हमारी,
हुई उसी में तूर्ण ॥

(९)

मंत्र मुग्ध अहि कठ पुतलीसा
कर उठता था मैं नाच—
समयोचितमय—काल चक्र का
भूल गया छय पांच ॥

(१०)

यह है उसी समय भीषण का—
हाय ! सूचना रूप ।
जाना मैंने नहीं ढका है
निकट तमोमय कूप ॥

(११)

तेज हीन भास्कर परिवर्द्धित
प्रभा पुष्ट पा ओप ।
घोर तमागम के पहले ज्यों,
हो जाता है लोप ॥

(१२)

बुझ जाता ज्यों दीप भभक कर
प्रणयोद्गार समान ।
शूल सदृश बिजलीवत् उसका
हुआ तथा अवसान ॥

(१३)

कहाँ गई वह प्रभा, दिव्य वह,
ज्योति दृष्टि की आज ।
कहां गये वे दृश्य मनोहर
मेरे सुख के साज ॥

(१४)

गिरा,—कूप में पडा हुआ हूँ
तमसाच्छन्न विशेष ।
अन्तस्तल की घोर उष्णता,
करती विकल अशेष ॥

(१५)

घोर ताप झोंके से मैं हूँ
व्यथित महा, असहाय ।
बीज मरुस्थल में सा होते
मेरे सभी उपाय ॥

(१६)

दीनबंधु ! निज ज्योति शक्ति की
रश्मि एक दे दान ।
होऊँ मुक्त, भूत सेवा हो
उर वीणा की तान ॥

सिद्धि

(१)

निष्ठुर वे हो गये? बनावट-
वा है केवल जांच निमित्त?
बिसर मुझे जो विलग गये हैं,
मेरे प्रियतम अनुपम वित्त ॥

(२)

यही उन्हें सन्देश सुना देंगे
यह,—वृथा और व्यवहार,
कठिन तपस्यायें कर मैंने
पाया है अनुपम उपहार ॥

(३)

जिधर देखता हूँ उनकी ही,
छबि है उधर नजर आती ।
कौन वस्तु है? जिसमें उनकी,
सत्ता मुझे न दिखलाती ॥

(४)

तन, मन, हृदय प्राण में वे हैं,
वा उनमें ही हैं ये सब ।
नहीं जानता,—किन्तु सदा वे,
मेरी गुण धुन में हैं अब ॥

(५)

जब बजती है तब उनकी
इच्छा पर मेरी हृत्तन्त्री ।
मैं हूँ यन्त्र, चलाते वे,
स्वेच्छानुसार मंत्री यंत्री ॥

(६)

चम्पक, सोन, जुही, सरसी रुह,
सिरिस, गुलाब, कुसुम जितने ।
खंजन, शुक, पिक, काग,
सारिका, हंस,-विहंगम वंश घने ॥

(७)

लोनी लतिका, कदली करिवर,
गिरिवर हरि केहरि मृग में ।
चामीकर, चपला सु-चन्द्रिका
प्रभा, उमंग दया-दृग में ॥

(८)

जल, थल, नभ, विधि रचना में,
सर्वत्र सबों में सभी समय ।
उन्हें,—उन्हीं की सत्ता पाता हूँ
मैं हो कर लौ में लय

[९]

ध्येय, मार्ग मेरा न एक अब
उनका पथ-इच्छा शिक्षा ।
है जीवन सर्वस्व, मंत्र जीवन का,
जीवन की दीक्षा ॥

[१०]

निष्फल है इस तन से बिछुड़े—
—रहने की मात्रा में वृद्धि ।
तन्मयता सी महासाधना की—
ही,—मुझे मिली है सिद्धि ॥

विधुरा
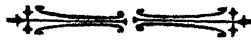
[१]

रुचिर स्व-रुचि सा भाव वृन्द
कल कुसुम क्यारियां रचरचकर ।
सींच स्नेह से किया मनोहर,
उर उपवन को अपने भर ॥

[२]

कहां गये ? जब उनके फुलने—
फलने का आया अवसर ।
क्या बिचार यों किया कठिन श्रम ?
किस मंसा विद्युत् बल पर ॥

[३]

देखा फिर न कभी तब से,
है हुआ कहां क्या परिवर्तन।
आहुति सा सोती ज्वाला को
उग्र बनाते खिले सुमन॥

[४]

दिव्य स्मृति सा उस अतीत के
विविधि चित्र ये देते खींच।
अलसाती सी विरह वेलि को,
हरी भरी कर देते सींच॥

[५)

चुन चुन उनसे कल कुसुमों को
माला नित्य बनाती हूँ।
अलजांजलि में भर भर मोती—
जीवन-निधि बरसाती हूँ॥

[६]

डाल प्रतीक्षा सन समाधि में,
लगती हूं अभिलाषा से।
हा! घन!! हुए निठुर थों!!!
मरती है चातकी पिपासा से॥

विह्वला

(१)

बनी योगिनी, हा! मैंने
दर दर की खाक छान डाली ।
तेरी धुन में लगे एक से
मुझे सुधांशु अंशुमाली ॥

(२)

प्रासादों में, उद्यानों में,
गहनों में गेह्वर दल में
जल में, थल में भटक रही हूं
तेरी सुधि में विह्वल मैं ॥

(३)

अय समाधि का केन्द्र! देख तू
लीन सामने है आता ।
पर ज्यों ललक लिपटने उठती
त्यों अदृश्य तू हो जाता ॥

(४)

मृग तृष्णा सा निर्मोही! छलिया!!
यह क्या क्रीड़ा तेरी ?
हाय! न ज़रा तरस खाना है
दारुण दशा देख मेरी ॥

[५]

नटवर ! खेल छोड़ दे अब यह
लखकर अपनी मेरी ओर ।
एक बार विधु वारिद पावे
चख चकोर व्याकुल मन मोर ॥

[६]

करलूं पूत चरण-रज से निज को
मै अतुल भाग्य हीना ।
फिर विहार करना रुचि सा तू
मन माना खाना पीना ॥

स्वी-कार
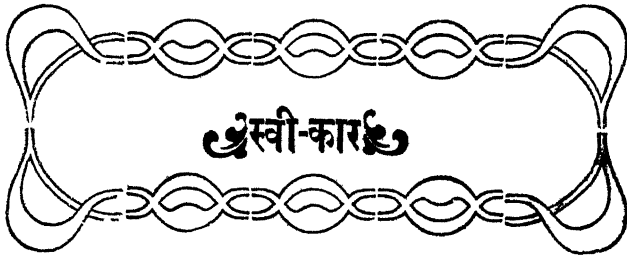
(१)

हे मेरे स्वामिन् ! हे राजन्
आते हो तुम मेरे घर ।
कैसे स्वागत करूं तुम्हारा
यह न समझ में आता पर ॥

(२)

किया न विमल सदन को अपने
अब तक विविध विषय में भूल
किंकर्तव्य बिमूढ़ बना हूँ
रेत राशि सालख गृह धूल ॥

(३)

शशि का स्वागत करने में है
जैसा नयन विहीन चकोर ।
नीरद् का स्वागत करने में
नृत्य कला-कलस्वर; बिन मोर ॥

(४)

हाय ! तुम्हारे स्वागत को
वैसा ही हूँ सामान विहीन ।
सांध्य सूर्य्य बल, प्रातः शशिसा
होता जीवन जलजि मलीन ॥

(५)

मिला तुम्हारी अपनी स्थिति को
हो जाता हूँ बिकल हताश ।
तुमुल तिमिर में एक सहारा है
बस, केवल यही प्रकाश ॥

(६)

अपनी ओर निहार प्रेम से
भरा हृदय मेरा भंडार—
आत्म समर्पण, समझ दीन
सागर सा कर लोगे स्वीकार

(१)

आह ! जरा झुकने दो शशि को
शशि से मिल जाने दो ।
बहुत दिनों से इस तृषार्त्त को
सुधा सिंधु पाने दो ॥१॥

(२)

इस चातक ने,—सदाराध्य—
हे स्वाती ! बहुत दिनों पर ।
पाया तुमको, चिराराधना
विविध विधान विरचकर ॥

(३)

जपता था जिस महा मंत्र को
हरदम मन मंदिर में ।
पायी उसकी सिद्धि आज इस-
दर्शन मिलन रुचिर में ॥

(४)

मेरे इस अमूल्य अवसर को
विफल करो मत बलकर ।

धन्य आज होने दो इसका
सदुपयोग कर जी भर ॥

(५)

बड़े यत्न से बहुत दिनों से
रोकी अभिलाषायें ।
रसना तक लहराती, आती
कहने आत्म कथायें ॥

(६)

नयन पुतलि, नव स्नेह सूत्र सा
जिसको रहा जुगाता ।
प्रेम पाथ से पटा पालता
प्राण समान बचाता ॥

(७)

जीवन ज्योति उसी आशा
लतिका पर होकर निर्मम ।
फुलने फलने के अवसर पर
अनल न पाटो प्रियतम !

(८)

उर की इस करुणा भिक्षा को
हँस कर यों मत टालो ।
असिवत पथ पर तप विशीर्ण की
लकुटी तोड़ न डालो ।

(१)

मध्य निशा में जब रहती है
प्रकृति परम नीरव एकान्त ।
श्रान्त सृष्टि विश्राम अङ्क में
अनुभव करती शान्ति प्रशान्त ॥

(२)

चहल पहल जग रङ्गमंच की
हर सब प्राणी अभिनय पात्र ।
निद्रा की माया में रहते पड़े
अचेत शिथिल सब गात्र ॥

(३)

तब तुम प्रकृति पुजारी चातक !
सुना स-राग स्व-स्वर लहरी ।
विद्युत् शक्ति डाल देते हो
उर में राग विराग भरी ॥

(४)

मुहुर्मुहुः रोमांचित कम्पित
होने लगती सारी देह ।

खुलते मुंदते बार बार ये
नयन आप बन जाते मेह ॥

(५)

क्या स्व-प्राण प्रियतम बिछुड़े को
मंगल हेतु मिलन आह्वान—
करते हो एकान्त प्रार्थना ?
जपते कोई मन्त्र महान ॥

(६)

है या आत्म-निवेदन ? किम्वा—
क्रंदन करुण ? वेदना गान ?
व्यथा विताड़ित उर की आहें ?
वा नैराश्य निखिल की तान ॥

(७)

एक तिरस्कृत प्रेम उदधि गुरु
गिरि उरसा पाकर एकान्त।
बरबस करते मुक्त जोर कर
रोके भाव प्रवाह अशान्त ॥

(८)

आकर्षण-मय सुधा स्व स्वर में
क्या कहते हो ? है अज्ञात।
तौभी सुनते ही हृतंत्री
खाने लगती है आघात।

(९)

तुरत गुद गुंदी सी भर जाती
अङ्ग झूठ होने लगते।

लोल लहर से विविधि भाव
अज्ञात, क्रान्ति करते जगते॥

(१०)

मंत्र मुग्ध सा तुरत मूक
भाषा मे करने लग जाता।
शब्द अनुकरण अविकल प्यारे!
इससे अतुल शान्ति पाता॥

(११)

जगता है अद्वैत भाव फिर
मैं हो जाता हूँ तल्लीन।
तब अभूत आनन्द अतुल में
रहती जग की कुछ सुधि हीन॥

(१२)

जी करता है पहुँच तुम्हारे
पास, विवश मैं बनूँ अनन्य।
महा मंत्र गाते हो जो सो
जप, लौ में लय होऊँ धन्य॥

विनय

(१)

बहुत दिनों से भटक रहा था
पद पद पर ठोकर खाता।
लगी लगन में लीन पथिक
उद्भ्रान्त सरिस बढ़ता जाता॥

(२)

ऊँचा नीचा विपुल विषम गिरि-
गह्वर गहनों में फिरता।
पहुँचा वहाँ जहाँ संभव है
मिले शान्ति पथ का सु-पता॥

(३)

भ्रमण अधिक आघात अमित से
क्लान्त पांथ जीवन-प्रवाह।
मंद मंद चलता लय धुन में
गाता चाह बनाता राह॥

(४)

छुटे क्षेत्र संकीर्ण—मिला है—
इसे विश्व विस्तृत समतल।
रमने दो स्वच्छन्द स्व-रुचि सा—
रचते तीर्थ सींचते जल॥

(५)

कभी न क्लान्ति अभी चोटें है—
ताजी, तदपि अनेक उपाय।
होने लगे पूर्व सा विषम
स्थल में ही लाने को हाय!

(६)

विवश वद्ध करने को खनते
खंदक, बांध बांधते क्यों?
घाव न भरे पूर्व के उद्यत
हो प्रहार निष्ठुर यों!

(७)

क्षमा करो, संकुचित क्षेत्र कर
राह रोक मत करो समल।
रमने दो इस वृहत् क्षेत्र में
स्वाभाविक गति से अविरल॥

[८]

देखोगे झट सुधा सींच यह
इसे मनोहर कर देगा।
तीर्थस्नान स-रति कर शान्ति-
—पुजारी, अभिमत पावेगा॥

[९]

किला हवाई, ढोंग, भूरि भ्रम
कथन जान पड़ता यह जो।
सादर विनय है कि कृपया यह
तुच्छ निवेदन मानो तो।

[१०]

मान गया गुजरा, बेगाना
तजो, न छेड़ो, छोड़ो राह।
धुन मे लय, लय लक्ष प्राप्ति में
होने में है शान्ति अथाह॥

पुकार

[१]

विविध विचित्र चारु चीजें मणि
माणिक्यादि विभव जी भर।
संग्रह कर उससे पाने को, तुमको
धाक जमा भू पर॥

[२]

लक्षहीन सा लगा भटकने
लालायित मैं इधर उधर।
आशा मनसूवा विमत्त फिर
कूदा जलनिधि में सत्वर॥

[३]

विभव-प्राप्ति तो दूर रही अब
बहता फिरता हो असहाय ।
हार थका सब कुछ कर निज भर
चलता कुछ चारा न उपाय ॥

[४]

उठने, आगे बढ़ने को करता
प्रयत्न अब जितना ही ।
चोट-विकल धँसता, खिचता—
जाता हूँ पीछे तितना ही ॥

[५]

विभव-प्राप्ति वह पथ न-मिले
जिससे तब कृपा प्रसादी शान्ति ।
हां, अवनति जंजाल जाल है
खलु अब समझ गया निज भ्रान्ति ॥

[६]

शरणागत असहाय डूबता की
पुकार है "पार करो" ।
कृपा कटाक्ष कोर फेरो अब
जरा प्रभो ! उद्धार करो ॥"

अवलम्बन

(१)

था कैसा अनुपम चितवन !
अति विचित्रता अति रहस्य मय—
निखिल निगूढ़ निरा नूतन ॥

(२)

करुणा सा आकर्षण वाला,
बंद विषाद समान निराला;
मनो वेदना विद्युन्माला,
छाया, रक्त स्वप्न निधि हाटक—
घट-विष भरा हुआ दर्शन ॥

(३)

लाख लाख करके थक जाता,
किन्तु न निज को स्थिर कर पाता,
चल दृल दुल को चित्त लजाता,
तब से है अज्ञात गूढ़ पर—
एक वेदना विदलित मन ॥

(४)

मृग तृष्णा से दृश्य मनोहर—
विपुल कल्पना पट पर खिंच कर,
लहरातीं लहरें पल पल पर,

खा खा चोटें जीवन तरणी।
करती व्यक्त अनोखा पन ॥

(५)

दिल हल्का करने को केवल,—
व्यथा बिताड़ित अतिशय चंचल,
शिशु नव जात सरिस हा! पल पल,
रुदन, मगर एकान्त निपट।
नीरव है, बस, अब अवलम्बन ॥

तिरस्कार

[१]

मोहन सुन्दरता, सु-मधुर छवि,
ललित लाड़, कल कवितासी।
रुचिर रूप, आकर्षण करुणा,
मृदुल दया, प्रिय प्रतिभा सी ॥

(२)

विषम वेदनासी विषाद सी,—
दारुण तेरी सुधि में लीन।

बैठ पिरोती मोती उर रत्नाकर के
ज्यों फणि मणि हीन ॥

[३]

लहरते लगना अतीत स्मृति
सागर आन्दोलित हो घोर।
अन्तर्जग में मच जाता है
हाहाकार मूक सब ओर ॥

(४)

कलित कामना सरिता-धारा
अतुल कल्पना में अविराम।
भाव भँवर में चकराती
बहती जीवन तरणी अभिराम ॥

(५)

जरा द्रवित हो सोच समझ तो
स्थिति को फिर भावी परिणाम।
हाय ! बरस कर ही क्या होगा
कृषी सूखने पर घन श्याम !

(६)

कूल लगा छाया निज कर ले
इस संदिग्ध समय पर आ।
बने न यह तो एक बार झट
कृपया दर्शन ही दे जा ॥

(७)

निर्मोही ! तव तू देखेगा
सांध्य कमल मकरन्द समान।

विवश सिमीरी कुचली कलिका—
बलि सी सब की सब अरमान ॥

(८)

अचिर वियोगिनि योगिनि यह
उस दिव्य लोक में जावेगी ।
कर अन्त संबन्ध जहां शुचि
तन्मयतामृत पावेगी ॥

(९)

इस दुखिया का मोल उपेक्षा का
फल तू तब जानेगा ॥
त्याग तेज बलिदान प्रगति से
तेरी आंख खोल देगा ॥

(१०)

मूक विषाद-वेदना कुल तू
पावस शरद जलद होगा ।
तिरष्कार दृष्टान्त बना यह
प्रणय-विचित्र विरद होगा ॥
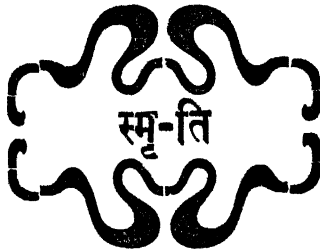
(१)

शिशु सोये सा हृत्तंत्री ने
एक थपेरा खा अज्ञात ।
सुभग शैलवर विपुल केदरा
सूना मे ज्यो झंझा बात ॥

(२)

एक अगम्य लहर सी लहरी
स्वर की शुचि अन्तस्तल में ।
दौड़ा दी,-वह गूंज उठा बस
कोने कोने से पल में ॥

(३)

मधु से ओत प्रोत छत्ते में
लगा बड़ा कंकर आकर ।
लगी लहर लहराने रस से
हुआ ववा लव छोरा पर ॥

(४)

भाव जाल कृत कलित क्रान्ति से
मनोराज्य हो गया अशान्त ।

अन्तस्ताप विकम्पित भूतल सा
प्रत्यंग व्यस्त विश्रान्त ॥

(५)

खिचने लगा महाकर्षण से
ज्यों नव वत्सागाय हुँकार।
अड़ने लगे राह पर पद पद
पर बाधा हो लोक विचार ॥

(६)

दो क्षुधार्त्त केहिर केहरि सा
हुआ विकल कर्त्तव्य विमूढ़।
अमित प्रश्न को हल करना था
दर्शन तत्व गूढ से गूढ़ ॥

(७)

हुआ लीन सा विपुल विकलता
वारिधि में ज्यों हो विश्रान्त।
शान्ति तरी ले आया त्यों ही
नाविक जीवन-मूरि सु-कान्त ॥

(८)

मानो मिला तृषाकुल चातक को
स्वाती का सलिल पवित्र।
कैरव कोक कोकनद को वा
शरद सुधाधर निर्मल मित्र ॥

(९)

परम मनोहर प्रेमस्थल में
उस जीवनालोक के संग।
छब नव जग वैषम्य वायु को,
भूल लगा करने रस रंग ॥

(१०)

सहसा झोंका एक कसाई सा
ले गया उसे हा ! छीन।
कुचल गई नव खिली कली करि
कर फणिमणि से हुआ विहीन

(११)

गूढ़ वेदना भग्न हृदय की
शान्ति निशा तम अंचल में।
तब से बैठ पिरोता मोती
माला धरे कमल दल में॥

(१२)

उर उपवन निधि विभव सुमन
मोती नयनांजलि में भर भर—।
तथा चढ़ाता एक तार से
बार बार पुलकित होकर॥

(१३)

डाल प्रतीक्षासन आशा की
ज्योति जगाकर खोले द्वारा।
पलक पावड़े बिछा जोहता—
रहा, राह अब लो तैयार॥

(१४)

पुरी न अब तक साध हुई सब
चेष्टायें अरण्य रोदन।
कहां गया ? हा ! स्मति में होता
अब उसका छाया दर्शन॥

(१)

सु-मलयानिल सवास मृदु शान्त,
समय ऋतु ऊषा ज्यों निभ्रान्त,
बचन पुरुषोत्तम के त्यों भव्य,
लगे करने अद्भुत कर्तव्य,
न पाया तक जिसका आभास,
वही अंकुर हो दिखलाया,
विश्व पटु वह था बहुत बड़ा ।

(२)

अचिनान तम हित तेज विशाल,
सुमन मक्खी को मकड़ी जाल,
प्रतापी, नीति निपुण था राज,
स्व-वश में लाया उर साम्राज्य,
हुआ मृग मोहन सुन्दर शब्द,
न अन्तर्भाव पता पाया,
वरुण का था वह पाश कड़ा ॥

(३)

सु-वृहत् पर अज्ञाताकर्षण,
सु सूत्रधर सूत्रकार प्रहसन,

हृदय वीणा से तार अटूट,—
लगा,-कर नयन, यत्न सब झूठ,
मधुर रव होता था अभिव्यक्त,
न कारण किन्तु खोज पाया,
रहस्याम्बर था अजब पड़ा।

(४)

उमगती क्षण क्षण मोहन तान,
मधुरिमा मय पल पल कल गान,
लगे करने अविरल अति क्षुब्ध,
बिसर कर सब कुछ हुआ विमुग्ध,
न जाना यह सांसारिक मोह,
अनेकों करता नृत्य नया,
दिया उस पर ही श्रवण गड़ा।
प्रणाय से चुन चुन पावन पुष्प,
बिसरता लेता मन अनुरूप,
ललक अर्पण की नाना नीति,
नियत करता पवित्र सह प्रीति,
सजाता डाला सुख का साज,
कहां हूँ तक न नज़र आजा,
एक वह अवसर लक्ष्य धरा।

(६)

रहा करता शुचि ध्यानाह्वान,
अचानक प्रभा पवित्र निधान,
सुधानिधि सुख,-वह, करता दान,
हुआ सहसा समुपस्थित आन,

महा महिमा अक्षय भंडार,
तमोहर तेज फैल आया,
अजब था उसमें मंत्र भरा ॥

(७)

दिया उर आसन सम्भ्रम डाल,
उठा लाने डाला तत्काल,
बढ़ा पूजा करने के हेतु,
सिंधु पर निज रचने को सेतु,
हुआ त्यों ही मोहन मुसकान,
शब्द मृदु धीमे से आया,
तुरत बढ़ने पाया न ज़रा ।

(८)

हुआ संध्या का अब अवसान,
कर्म, भवतव्य बड़ा बलवान,—
समझ, अवसर का रखता ध्यान,
छोड़ दो यह,—इस वक्त,—विधान,
पड़ा आ जादू भरा कटाक्ष
क्षोभ ने तत्क्षण अपनाया,
मूर्तिवत् हुआ स्नेह हमारा ॥

(९)

यहीं होने दो आज समाप्त,
कभी फिर होगा अवसर प्राप्त,
अगम है अंक कर्म का खेल,
अमिट है सुख दुख दिन का मेल,
कुहू पावस निशि विध्युहास,
दिखा कर गया न फिर आया,
देखता ही रह गया खड़ा ।

(१०)

तभी से आशा रश्मि प्रकाश,
घटता तम वैकल्य निराश,
प्रतीक्षा की जारी है डोर,
फिरेगी उस कटाक्ष की कोर,
प्रकट वा देखूंगा वह रूप,
स्ववश, जीवन मणि जो लाया,
तथा है आसन अभी पड़ा ॥

(११)

उसे नाना विधि नित्य सँवार,
एक टक हो आलेता द्वार,
देखता फिर फिर राह अनूप,
गूँथता चुन चुन नाना पुष्प,
कभी जो हो जाता तल्लीन,
देखता तो वह है आया,
हर्ष तब होता बहुत बड़ा ॥

(१२)

ललक शुचि पूजा स्पर्श निमित्त
उठूं जब सम्भ्रम पुलकित चित्त,
सुरति में लखकर आया पास,
किन्तु भ्रम होता है विश्वास,
कहां है वह आनन्द निधान!
न किंचित् दर्शन फिर पाया,
धैर्य धर अब तक रहा अड़ा ॥

(१३)

मनुज में हूं साधारण लोग,
न सागर सा हो सकता भोग,
सभी समयों का भारी झोंक,
तमो मय खलता है यह लोक,
शीघ्र हो जावे अब आलोक,
न कम श्रम भ्रमने से पाया,
सदय ! सुनता,—हो विज्ञ बड़ा।

(१४)

सुमन का होने दो सुविकाश,
तमोहर पावन परम प्रकाश,
अन्यथा कमल कली है व्यर्थ,
सिद्ध क्या होगा इससे अर्थ !
कामना यह अन्तिम हो पूर्ण,
न बढ़ इससे है मन भाया,
ज़रा ढरका दो दया घड़ा॥
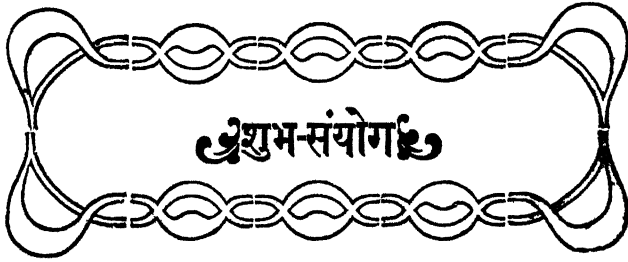
शुभ-संयोग

(१)

वह मिला मुझे शुभ अवसर था।
मन हर्षित था, तन पुलकित था,
हृदय प्रेम का शुभ सरवर था।
वह मिला मुझे शुभ अवसर था॥

(२)

देख देख कर नयन जुड़ाया,
दुर्दिन दुख। दुस्सह विसराया,
निपट शून्य में आश्रय पाया,
जर्जर फिर नूतन हो आया,
अपने को अति धन्य समझ कर मनमें फूले नहीं समाया।
पूर्व जन्म में कुछ कर पाया,
उसी सुकृति ने फल उपजाया,
पाया उसको अनायास ही जो हार्दिक था इप्सित वर था।
वह मिला मुझे शुभ अवसर था॥

(३)

पास सदा सुख से रहता था,
विविध कष्ट यद्यपि सहता था,

नहीं अल्प भी भय खाता था,
कांटा यद्यपि चुभ जाता था,
आकर्षित अति हो हो करके शीघ्र शीघ्र आगे आता था।
पग पग पर ही तन छिलता था,
व्यथा विपुल सहता खिलता था,
नहीं मोद में सुध बुध रहती और हुआ भी कुछ नीडर था।
वह मिला मुझे शुभ अवसर था॥

(४)

वार अनेकों बार हुये थे,
व्यंगों के बौछार हुये थे,
बहु संदिग्ध विचार हुये थे,
विविध गुप्त व्यापार हुये थे,
की न तनिक भी चिन्ता इनकी, अति रति गति-विस्तार हुआ था।
उर उसको उपहार हुआ था,
वह जीवन का सार हुआ था,
रुकी वृत्तियां और ओर से दृढ़ हो ध्यान लगा उस पर था॥
वह मिला मुझे शुभ अवसर था॥

(५)

भरा पराग पुष्प खिल आया,
मन मधु कर हो मुग्ध लुभाया,
अपने को सब विधि विसराया,
केवल उस पर चित्त लगाया,
आंख मूंद कर हुआ अग्रसर, नहीं सोचने भी कुछ पाया।
जो कुछ भाया सो ही गाया,
थी उमंग की अद्भुत माया,

समझा था अति धनी आपको, मानो मिला रत्न आकर था ॥
वह मिला मुझे शुभ अवसर था ॥

(६)

हृदयालय में दीप जलाया,
तम फिर और न रहने पाया,
जब प्रकाश चारों दिशि छाया,
अति लालित्य नजर तब आया,
प्रियतम "लखन" ध्यान से केवल, महानन्द अनुभव कर पाया।
तब अतीत का ध्यान भुलाया,
चिन्तन पर परदा था छाया,
भाव वही तब प्रबल रूप से अंकित गाढ़ हुआ उर पर था ॥
वह मिला मुझे शुभ अवसर था।

(७)

पहले विष भंडार जहां था,
तब अमीय रस सार वहां था,
कानन अगम अपार जहां था,
तब उद्यान उदार वहां था,
समझा था दुख भरा जहां पर देखा सौख्यागार वहां था।
झिंगुर का झनकार जहां था,
कोयल का स्वर सार वहां था,
उस दर्शन में थी शक्ति वही जो भला ऊँचा जो पामर था।
वह मिला मुझे शुभ अवसर था ॥

(८)

विभो! उचित है करुणा करना,
इस दुख दुस्सह को झट हरना,

जो छोड़ेगा इसको, पामर,
बड़ा अभागा होगा वह ॥

(३)

सभी दिशाओं के पथ तज कर,
वृत्ति विषम सरितायें सब।
तेरे प्रेम अनन्त अब्धि की,
ओर वेग से बहती अब ॥

(४)

चुन कर भव्य भाव पुष्पों को,
शक्ति सूत्र में गूँथ सयत्न।
तुझे पूजने आया हूँ मैं,
चढ़ा प्राण सर्वोत्तम रत्न ॥

(५)

तंडुल, शाक सदृश यह मेरी
पूजा तुच्छ समर्पण की।
हो सादर स्वीकार, चाह है,
अब जीवन के क्षण क्षण की ॥

(६)

युग युग, दिन दिन, पल पल के सब
अपने उद्देश्यों से युक्त।
लीन हुआ मैं दया दृष्टि पा,
तेरी हो जाऊँ जो मुक्त ॥

विधान

(१)

ऊषा सी संध्या सी नित्य—
तरह तरह के चिन्त्य अचिन्त्य,
निरत रही करने में सुन्दर
कृत्रिम और अकृत्रिम सर्व ॥
बसन भूषणादिक शृंगार ।

(२)

गया जहां तक प्रतिभादित्य,
कलित कल्पना सा साहित्य,
खोज तहां तकसब कर डाला,
करती निर्मित छबि पर गर्व ॥
तुझे रिझाने को रिझवार ॥

(३)

समय बृद्धि से जैसे सर,
प्राची से होते हैं दूर,
सकी न कर आलिंगन वैसे,
पड़ता गया बड़ा अन्तर ॥
मुझ में तुझ में हे प्रियतम !

(४)

समझ गई मैं अब भरपूर,
खुली आँख छवि-मद कर चूर,
जीवन ज्योति प्रकाश दिव्यवर,
पाया है अब अतिशय सुखकर॥
विधि यह है कैसी अनुपम॥

(५)

नहीं चाहिये विभव-निधान,
छान बीन का कुछ सामान,
सुलभ सभी को पर अमूल्य है,
अनुपम तेरी प्राप्ति-विधान॥
हे मेरे आनन्द अपार!

(६)

सुमन सरिस शुचिता की खान,
प्रेम पुनीत हृदय का दान,
आत्म समर्पण तन्मयतामय
तुझे चाहिये हे मतिमान!
अपनाने को सभी प्रकार।

दुविधा

(१)

जाने कैसे कहूँ कहूँ फिर
जाने कैसे नहीं कहो ?
क्षुब्ध मुझे अतिशय करती है
चित्तवृत्ति अति चंचल हो ॥

(२)

हृदय क्षेत्र में विविध विचारों का
है मचा हुआ संग्राम ।
बड़ा यत्न करने पर भी,
निश्चत कर सका नहीं परिणाम ॥

(३)

यहाँ कमल हो कमल कलेजे में,
पाओगे ठौर वहाँ ।
दोनों जगह तुम्हें सुख,
प्रेमालिंगन का है यहाँ वहाँ ॥

(४)

तुम्हें मिलेगा स्नेह सुधा शुचि
प्रणायासन तुम रहो जहाँ ।
भेद एक है पूज्य और
वात्सल्य भाव का यहाँ वहाँ ॥

(५)

विविध भावनायें उत्कंठित
वाणी कहने को बढ़ती ।
किन्तु कठ तक आ आ करके
लज्जा विवश नहीं कढ़ती ॥

(६)

बनूँ तुम्हारे पथ स्वतंत्र का
कंटक क्यों बाधा लाऊँ ।
उचित यही जँचता है मनमें
चुप न साध मैं क्यों जाऊँ ॥
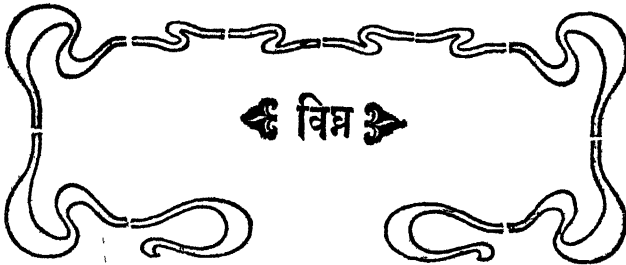
(१)

अवलोक सौम्य स्वरूप शुचि,
प्रतिभा प्रदीप्त बिशाल ।
सम्भ्रम उठा स्वागत तथा,
सम्मान का कर ख्याल ॥

(२)

निज भवन भीतर भव्य भूपर,
आसनी उर डाल ।
उत्सुक हुआ उत्साह आरति
सज बड़ा तत्काल ॥

(३)

आया घुमर कर पाशविक बल
सघन घन घिर घोर ।
द्रुत वेग मन मारुत तभी ॥
बहने लगा अति जोर ॥

(४)

गर्जन हुआ आतंकवर्द्धक
विकट वज्र समान ।
रजकण रजोगुण से हुआ
आसन बिछा भी म्लान ॥

(५)

हो क्षीण क्षण क्षण आरती भी,
हो गई निर्वाण ।
गति वह हुई जिसका किया था
स्वल्प भी न गुमान ॥

(६)

अति भीति वारि हिमैव वर्षा से
कँपे सब अंग ।

शैथिल्य के प्रावल्य से गति
हो गई वह भंग ॥

(७)

सौभाग्य से यदि देख भी
पाया स्व-देव उपास्य ।
सपूज्य कर तो भव्य हो
सकता न हाय ! सहास्य ।

(८)

मन की रही मन में, रही है
धूल में मिल आशा ।
है दीखता जीवन सुमन का,
दूर सरस विकाश ॥

(९)

हे देव ! परिचय तेज का,—
दो धैर्य शक्ति विवेक ।
जो कर सकें चंचल न ऐसे,
विघ्न विकट अनेक ॥

(१०)

उस पुण्य पद पंकज सु रज से
स्पर्श हो अभिषेक ।
इस जन्म में सर्वस्व सर्व-श्रेष्ठ
है वह एक ॥

(११)

जिस रज स्पर्श पुनीत से
यह जन्म होगा धन्य ।

वह पांशु है वह फिर
उसे तज चाहिये क्या अन्य !

(१२)

इस विघ्न बंदी का सहायक
हाइये आराध्य !
यह, कष्टसाध्य असाध्य भी
हो जाय जिससे साध्य ॥

(१)

देव ! मिले यह दिव्य प्रसाद ।
आत्मानन्द अमीरस पीऊँ,
चरण कमल अलि हो साह्लाद ।
देव मिले यह दिव्य प्रसाद ॥

(२)

शान्ति सलिल से निज को धोऊँ,
सकल विकारादिक मल खोऊँ,
सुन्दर शुद्ध सभी निधि होऊँ,
सुख दुख सदा सभी स्थितियों में
रहूँ एक रस शुचि अविषाद।
देव! मिले यह दिव्य प्रसाद॥

(३)

कर्म क्षेत्र में जाग्रत होऊँ,
सुदुद्देश्य में दृढ़-व्रत होऊँ,
लक्ष-सिद्धिसाधन रत होऊँ,
निश्चित समुचित पथ से विचला
सके न कुछ कोई अपवाद।
देव! मिले यह दिव्य प्रसाद॥

(४)

नहीं काल तक से भय खाऊँ,
निर्भय निःसंशय हो जाऊँ,
विलस मंगल मग अपनाऊँ,
उग्र शक्ति सरि में बह जावें
तृण से लघु गुरु सकल प्रमाद।
देव! मिले यह दिव्य प्रसाद॥

कुञ्ज।

[५]

मुझे कामना है न राज की,
स्वर्ग सौख्य की सुर समाज की,
मोक्ष परम पदसाज ताज की,
भूत दया, रति, दुखियों के दुख
हरना ही हो अन्तर्नाद ।
देव ! मिले यह दिव्य प्रसाद ॥

॥ इति ॥

(१) हिन्दी ग्रन्थमाला।

प्रथम पुष्प सेवाश्रम—यह सेवा भाव से भरा हुआ सामाजिक उपन्यास है। इसमे सेवा का भण्डार, सामाजिक कुरीतियों का आगार, आजकल के सामाजिक रीति-रस्मों का अत्याचार और सच्चे साधु सन्यासियों की देश सेवा का चमत्कार इस ढंग से भर दी गई है कि पुस्तक देखने और पढने से ही बनता है। लेखक महाशय ने भाव के साथ २ इसकी भाषा इतनी सरल कर दी है कि साधारण पढ़े हुए बालक तथा स्त्रियाँ भी इसको सुगमता से पढ़कर समझ जा सकती है कई सुन्दर एक रंगे और तीन रंगे चित्र देकर इस पुस्तक की सुन्दरता को और भी बढ़ा दियागया है। मूल्य लगभग ५००पृष्ठ की पुस्तकों का केवल २॥) रु०।

द्वितीय पुष्प नरेन्द्रमालती—यह उपन्यास नही बल्कि शिक्षा का सागर है। इसमें सच्चा प्रेम, भाग्य परिवर्तन, समय का फेर, हार्दिक उद्योग का सुन्दर फल, और न्याय के दिग्विजय का ऐसा खाका चित्र खीचा गया है कि पुस्तक पढ़ते २ मुग्ध हो जाना पड़ता है। पुस्तक इतनी रोचक भाषा में लिखी गई है कि एक वार हाथ में ले लेने पर बिना समाप्त किये छोड़ने का जी नही चाहता। कई एक रंगे तथा तीन रंगे चित्र के दिये जाने पर भी दाम केवल १॥) रुपया।

तृतीय पुष्प निर्मला वा अमेल विवाह—इस पुस्तक में वृद्ध विवाह का दुष्परिणाम बड़े हृदय ग्राही शब्दों मे लिखा गयाहै। लेखक ने अपने हृदय के सच्चे उद्गारों को

सर्वसाधारण के सामने स्पष्ट शब्दों में रख दिया है। सर्व-साधारण के सुभीते के लिये लगभग १५० पृष्ठ की पुस्तको का केवल ||।) आना।

(२) कविता कुसुममाला।

प्रथम पुष्प कुञ्ज—इस छोटी सी पुस्तक में कवि "विनीत" के फुट कर कविताओं का सुन्दर संग्रह किया गया है। इनकी कविता कितने जोशीले और प्रभोत्पादक होते है, यह पाठकों से छिपी नहीं है। दाम सर्व साधारण के सुभीते के लिये केवल ॥) आना।

द्वितीय पुष्प आदर्श माला—(लेखक श्रीयुत बा० ऋषेश्वरी नारायणजी वर्म्मा) इसके नाम ही से पाठकगण विषय का पता लगा सकते हैं। यह पुस्तक खण्ड काव्य में बड़े ही सुन्दर छन्दों में लिखी गई है। विषय ऐसा हृदयग्राही है। कि लेखक का कलम चूम लेना पड़ता है। पुस्तक अभी छप रही है। दाम लगभग १॥) रु०।

(३) मैथिली साहित्य माला।

प्रथम पुष्प मैथिली गीताञ्जली—इसमें मैथिल कोकिल कवि विद्यापति तथा अन्यान्य कवियों की बनाई नित्य व्यवहार में आने वाली मैथिलगीतों का अपूर्व संग्रह है। छपाई तथा कागज उत्तम। दाम १॥)

द्वितीय पुष्प बाल क्रीड़ा—यह बालकों के लिये रंगीन पुस्तक है। इस पुस्तक को बालक खेलकूद में पढ़ते २ बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। मूल्य ≡) आना।

तृतीय पुष्प कामिनाक जीवन—इस पुस्तक में मैथिली स्त्रियो की आज कल कैसी हालत हो रही है पद्य में बड़ी खूबसूरती से लिखी गई है। पुस्तक देखने हीं योग्य है। दाम केवल =) आना।

चतुर्थ पुष्प मिथिला महात्म्—इस छोटी सी पुस्तिका में मिथिला देश की कीर्त्ति तथा इसके पुण्य महात्म् पौराणिक ढंग के आधार पर लिखी गई है। एक वार पढ़ जाने से हृदय गद्गद हो जाता है पुस्तक अभी छप रही है। मू० लगभग ॥)

कुछ फुटकर पुस्तकें।

महामाया—यह एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें एक आदर्श रमणी का अपने पति के साथ तीर्थ भ्रमण आज कल के धूर्त पण्डेपुजारियों का अत्याचार, इत्यादि २ बातें बड़े सरल भाषा में दिखलाई गई है। दाम केवल ॥=)

कृष्ण कुमारी—यह एक एतिहासिक उपन्यास है। इसमे पतिव्रत धर्म तथा स्त्री पुरुष का पारस्परिक प्रेम कूट २ कर भरा है। यह उपन्यास प्रत्येक स्त्री पुरुषों के लिये उपयोगी है। मूल्य ।=) आना।

भोलानाथ की राम कहानी—इसमें स्वामि भक्त एक कुत्ते की सच्ची, वीती हुई, स्वतन्त्र तथा निर्भीक कहानी है। पुस्तक इतना रोचक है कि पढ़ने ही से बनता है। मूल्य केवल ।-) आना।

ब्रह्मचर्य्य शिक्षा—विषय नाम ही से ज्ञात है। आज कल इस शिक्षा की कितनी आवश्यकता है—यह लिखना व्यर्थ

है। इस पुस्तक की एक २ प्रति प्रत्येक बालकों के हाथ में रहना चाहिये। मूल्य लागत मात्र केवल ।=) आना

सूखा हुआ फूल—सूखे हुये फूल की गंध स्थाई होती है। इस पुस्तक में दो मनोहर शिक्षाप्रद गल्पें लिखी गयी हैं। मूल्य केवल ।) चार आना।

राष्ट्रीय तरंग—इसमें राष्ट्रीय तथा सामाजिक भाव के अच्छे २ कविताओं का संग्रह है। एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। मूल्य केवल ।) आना।

हीरे का मूल्य—यह बंग उपन्यास का भाषानुवाद है। भाषासरल त आ भाव शिक्षाप्रद है। मूल्य ।) चार आना।

एक नम्र निवेदन

मैंने इन पुस्तकों तथा मालाओं के अतिरिक्ति अपने यहाँ से "रमणी रत्नमाला, बाल चरित्र माला, आदर्श चरित्र माला तथा बाल विनोद पुष्प मालाओं के गूथने का भी निश्चय कर लिया है। पुस्तकें हिन्दी के नवयुवक लेखकों से लिखवाई जा रही हैं। यदि आप महानुभावो की ऐसी ही सहानुभूति बनी रही तो बहुत शीघ्र उन मालाओं के साथ आप सज्जनो की सेवा के लिये उपस्थित होऊँगा। आप लोग अधिक नहीं केवल ॥) आठ आने प्रवेश शुल्क दे स्थाई ग्राहक में नाम लिखा हमारी सहायता करें और हमें हिन्दी सेवा के लिये उत्साहित करें।

हिन्दी प्रेमियों का एक मात्र कृपाभिलाषी—

आनन्द बिहारी प्रसाद,

संचालक हिन्दी साहित्य कार्य्यालय

लहेरियासराय (दरभंगा)